श्रवण-मनन-निदिध्यासन

१. **श्रवण -** अद्वैत वेदान्त का ज्ञानमार्ग श्रवण, मनन एवं निदिध्यासन का मार्ग है। श्रवण- श्रवण, मनन, निदिध्यासन के द्वारा की ब्रह्मसाक्षात्कार की प्राप्ति सम्भव है। इस सम्बन्ध में वेदान्तसार की विद्वन्मनोरञ्जनी टीका में कहा गया है – "श्रोतव्य: श्रुतिवाक्येभ्यो मन्तव्यश्चोपपत्तिभि: । मत्वा च सततं ध्येयं एते दर्शनहेतव:" श्रुतिवाक्यों के द्वारा ब्रह्म के विषय में श्रवण करना चाहिए, श्रवण की गई वस्तु का उपपत्तिपूर्वक मनन करना चाहिए और मनन करने के पश्चात् उस पर ध्यान केन्द्रित करना चाहिए। ऐसा करने से ब्रह्मसाक्षात्कार सम्भव है। वेदान्त वाक्यों को श्रवण करने की इच्छा से जब कोई साधक किसी सद्गुरु की शरण में जाकर "तत्त्वमसि" आदि वेदान्तवाक्यों का श्रवण कर उनका छह प्रकार के लिङ्गों के द्वारा परब्रह्म में तात्पर्य निर्धारण करता है, उसे श्रवण कहते है - श्रवणं नाम षड्विधलिङ्गैरशैषवेदान्तानामद्वितीयं वस्तुनि तात्पर्यावधारणम्। लिङ्गानि तूपक्रमोपसंहाराभ्यासापूर्वताफलार्थवादोपपत्त्याख्यानि। वस्तुत: ब्रह्मज्ञान को प्राप्त करने के लिए किसी सद्गुरु की शरण में जाना अत्यन्त आवश्यक है क्योंकि गुरु की कृपा से ही ब्रह्मविद्या की प्राप्ति सम्भव है।

आत्म साक्षात्कार के साधन श्रवण, मनन और निदिध्यासन का वर्णन बृहदारण्यकोपनिषद् में प्राप्त होता है। "तस्माद् ब्रह्मण: पाण्डित्य: निर्विद्य बाल्येन तिष्ठासेद् बाल्यं च पाण्डित्यं व निर्विद्याथ मुनि:" ब्राह्मण को चाहिए कि आत्मज्ञानरूप पाण्डित्य को सम्पूर्णतया जान कर बाल्य और पाण्डित्य को नि:शेषत्वेन ज्ञात कर वह मुनि (योगी) होता है। यहाँ पर पाण्डित्य शब्द से श्रवण, बाल्य शब्द से मनन और मुनि शब्द से निदिध्यासन का उपस्थापन किया गया है। नृसिंह सरस्वती का कहना है कि - "श्रवणादिसाधनानां ब्रह्मात्मैकत्वविज्ञानं प्रयोजनं ब्रह्मणो

ज्ञानस्य तु तत्प्राप्ति: फलम्" ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति" तरति शोकमात्मवित्" इत्यादिश्रुतिभिरित्यर्थ: " अर्थात् श्रवणादि साधनों का प्रयोजन है ब्रह्म और आत्मा के एकत्व का ज्ञान, और ब्रह्मज्ञान का फल है ब्रह्म की प्राप्ति । ब्रह्मवेता ब्रह्म ही हो जाता है। और आत्मवेत्ता शोक को पार कर लेता है ।

२. **मनन –**

मनन का अर्थ – अद्वैत वेदान्त उक्त छ: प्रकार के लिङ्गों द्वारा समस्त वेदान्त वाक्यों का अद्वितीय ब्रह्म में तात्पर्य है, इस निश्चय रूप श्रवण के बाद वेदान्त के अनुकूल तर्कों से उस अद्वितीय ब्रह्म का सतत चिन्तन करना मनन कहलाता है । इस सम्बन्ध में ब्रह्मसूत्र के भाष्य में आचार्य शङ्कर कहते हैं – "यद्यपि श्रवणव्यतिरेकेण मननं विदधच्छब्द एव तर्कमप्यादर्तव्यं दर्शयतीत्युक्तम् । नानेन मिषेण शुष्कतर्कस्यात्रात्मलाभ: सम्भवति । श्रुत्यनुगृहीतं एव ह्यत्र तर्कोऽनुभवाङ्गत्वेनाश्रीयते ।" अर्थात् जिस श्रुति से श्रवण और उससे अतिरिक्त मनन का आत्मदर्शन के उपाय के रूप में प्रतिपादन है । वह तर्क को भी आदरणीय बताती है, किन्तु उससे यह नहीं माना जा सकता कि शास्त्रविरोधी शुष्क तर्क भी आदरणीय है । यहाँ तो श्रुति से समर्थित तर्क को ब्रह्मानुभूति के सहायक रूप में अङ्गीकार्य है । श्रुति के द्वारा तत्त्वार्थनिश्चय के अनन्तर असम्भावना आदि दोषों के निरास के लिए जिस तर्क का अवलम्बन अपेक्षित है, वही वेदान्त के अनुकूल होता है ।

३. **निदिध्यासन :**

विजातीय शरीर आदि के विचारों से रहित तथा अद्वितीय वस्तु ब्रह्म के विषय में सजातीय विचारधारा का प्रवाह निदिध्यासन कहा जाता है । आत्मत्त्व चैतन्यरूप है, इससे भिन्न जगत् के

सभी पदार्था जड़ हैं। अतएव सभी अनात्म पदार्थ विजातीय हैं । उनसे हमें जो प्रतीति होती है वह आत्मतत्त्व की प्रतीति के अनुकूल न होने से विजातीय है । इस प्रकार की की सभी सभी विजातीय प्रतीतियों का परित्याग कर आत्मा के अनुकूल सजातीय प्रतीतियों को तैलधारावत् अविच्छिन्न रूप से प्रवाहित करना निदिध्यासन है ।" ब्रह्मसूत्र "आ प्रायणात् तत्रापि हि द्रष्टम्" के भाष्य में कहा गया है कि मरणपर्यन्त निदिध्यासन का अनुष्ठान करना चाहिए । इस सम्बन्ध में श्रुति में भी कहा गया है - "स यो ह वै तद्भगवन् मनुष्येषु प्रायणान्तमोङ्कारमभिध्यायीत" अर्थात् हे भगवन् वह जो मनुष्यों में मरणपर्यन्त ओंकार का ध्यान करता है । मरणपर्यन्त ध्यान या उपासना करने का तात्पर्य है - जब तक ब्रह्मज्ञान नहीं होता, तब तक उपासना करना, क्योंकि ब्रह्मज्ञान हो जाने पर फिर उपासना का प्रयोजन नहीं रहता । इसलिये ब्रह्मज्ञान होने तक सत्कारपूर्वक निरन्तर निदिध्यासन का अभ्यास करते रहना अपेक्षित होता है । इसी भाव को पुष्ट करते हुए श्रीमद्भगवद्गीता में कहा गया है - हे अर्जुन, यह पुरुष मरण समय में जिस जिस देवताविशेष का स्मरण करता हुआ प्राणवियोगकाल में जिस जिस देवताविशेष का स्मरण करता हुआ उसी देवता विशेष को प्राप्त होता है ।